Swami Dayananda Saraswati

ओ३म्

Vaidic Dhwani

VOL 8 # 2-4 EDITION 29 APRIL-JUNE 2017

आत्मा की महिमा

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ।।

– ऋ० १।६।३; साम० ६।३।१४; अ० २०।६९।११

विनय – यह शरीर तो मर्य है, मुर्दा है । इस समय भी मुर्दा है । जब इस शरीर को अर्थी पर उठाकर जलाने के लिए ले-जाया जाता है, उस समय यह शरीर जैसा मुर्दा होता है वैसा ही यह अब भी है, पर इस समय यह मुर्दा इसलिए नहीं दीखता चूँकि इन्द्र (आत्मा) ने अपनी चेतनता, सुन्दरता इसमें बसा रखी है ।

हे इन्द्र आत्मन् ! जब यह शरीर सुषुप्तावस्था में होता है तब तुम ही इसमें से अपनी जागरण-शक्तियों को समेट लेते हो, अपने में खींच लेते हो, अतः तुरन्त हमारा चलना-फिरना, बोलना आदि सब व्यापार बन्द हो जाता है । सदा चलने वाले मन के भी सब सङ्कल्प-विकल्प बन्द हो जाते हैं । यह शरीर जड़वत् हो जाता है और जब तुम फिर अपनी जागरण-रश्मियों को शरीर में फैला देते हो तो फिर मनुष्य उठ बैठता है, सोचना-विचारना शुरु हो जाता है, मनुष्य फिर चलने-बोलने लगता है । इस 'अकेतु' शरीर में फिर चेतना दीखने लगती है-उसका खोया हुआ जाग्रत्-रूप फिर उसमें आ जाता है । हे इन्द्र ! सुषुप्ति में भी तुम अपनी जागरण-शक्तियों को केवल समेट लेते हो, पर जब तुम इस शरीर को छोड़ ही देते हो तब क्या होता है ? तब यह शरीर अपने असली रूप में-मिट्टी के ढेर के रूप में दीख पड़ता है । न इसमें ज्ञान होता है और न रूप । हे इन्द्र ! इस मिट्टी के बर्त्तन में अमृत होकर तुम ही भरे हुए हो । इस मिट्टी में जो रूप, सुडौलता आ गई है, सुन्दर अवयव-संनिवेश हो गया है यह तुम्हारे व्यापने से हुआ है और इस मिट्टी की मूर्त्ति में शव की अपेक्षा जो इतनी चेतनता दिखाई देती है वह तुम्हारे समाने से ही हुई है । यह शरीर जो मुर्दा होने पर इतना अपवित्र समझा जाता है कि इसे छू लेने से स्नानादि शौच करना पड़ता है वही असल में मुर्दा शरीर, हे परम-पावन इन्द्र ! इस समय तुम्हारे समाये रहने के कारण, तुम्हारे पवित्र संस्पर्श से इतना पवित्र हुआ-हुआ है । तुम्हारा इतना अद्भुत् माहात्म्य है । मनुष्य तुम्हारे इस माहात्म्य को क्यों नहीं देखता ?

आज हम स्पष्ट देख रहे हैं कि इन सब मुर्दा-जड़ शरीरों में चेतनता लाते हुए और इन अरूपों में रूप-सौन्दर्य प्रदान करते हुए तुम ही अपनी जाग्रत्-शक्तियों के साथ उदय हुए-हुए हो, तुम ही आये हुए हो ।

"O Mortals, you owe your rise and eminence to that resplendent God who with the rays of the dawn awakens life in the lifeless and gives form to the formless.

– Swami Satya Prakash Saraswati
Satyakam Vidyalankar

CONTENTS

Editorial 2
Tolerating Injustice is a Crime 3
यज्ञ तथा दान 4
Chants for Universal Peace 5
Birthday Blessings 6
साधारण से असाधारण बनने की यात्रा है जीवन . 7
Who am I? 9
वेद की तीन देवियाँ 11
Workshops 12
Pravachans 12
Varshikotsav 15

ओ३म्
Arya Samaj For Vaidic Dharma

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
Krinvanto Vishvam Aryam
Make this world noble

Editorial

The 7th principle of Arya Samaj "सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिए।" refers to our conduct towards others. This principle is widely acclaimed for its universal appeal and practical utility. It propounds a code of individual conduct and social justice. It teaches us how to behave and relate to others. The primary objective of Arya Samaj is to do good to the whole world thereby promoting physical and spiritual well being. Our dealings and conduct towards all should be guided by righteousness, love and justice in accordance with the dictates of Dharma. Our impartial conduct with others should be based on love and not attachment. Love and attachment are two different sentiments, the first i.e. Love - strengthens the relations whereas the later results in despair. When we say "सब के साथ", this "all" also includes the five elements i.e. Earth, Water, Fire, Air and Space ("पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश"). Showing any kind of disrespect to these is disrespecting God Almighty. This is being certified by this mantra of Yajurveda -

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा
परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि ।

सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती
चासि पयस्वती च ॥

– यजुर्वेद १.२७ ॥

This mantra states very clearly that if we pollute these elements - also known as deities - we shall be polluting the whole environment thus incurring for ourselves His wrath and not His blessings. Hurting animals and plants is also not permitted by Him. Hence we must learn to practice giving due respect to all that they deserve, be it human beings, living beings or the elements of nature.

– Harsh Chawla

Come One, Come All!

Avail the opportunity to learn from the Vedas - the eternal source of true knowledge.

The ASMI Library is equipped with a large number of books for which you have the options of

- Purchase
- Get them issued and read at home
- Come and read here and increase your self-awareness.

Tolerating Injustice is a Crime

(This editorial was written by Dr. Dharmavir in Paropakari magazine in February 1984)

The ways of the world sometimes raise a doubt, as to what is a correct righteous behaviour and what is an unrighteous one. While observing the people around one cannot help but notice that a corrupt person using illicit means gains success whereas an honest person is seen struggling and hardly reaches the helm of success and wealth. In our society we have numerous examples where an autocrat and a tyrant live a long life. Aurangzeb lived for 90 years whereas Chhatrapati Shivaji died at the age of 60. The lives of the kings and affluent people are hardly considered pious and their righteousness does not extend beyond compliments by the society. Therefore an obvious doubt is a natural conclusion of this observation.

Here we should remember that truth and falsehood should not be judged and measured in terms of material wealth. The wealth of a righteous man would be lacking when compared to that of an immoral person. Seeing this we tend to conclude that a truthful person is poor and feeble.

This is not something new. This dilemma is eternal. It was always there and would continue to remain in all times to come. Maharishi Manu has analysed both these aspects quite precisely. Worldliness is confined to wealth and desire. A person confined to these cannot understand or achieve the true nature of "Dharma". A person who truly wishes to be righteous has to move towards knowledge (Jyan) and its ultimate source the Vedas. Without the knowledge and understanding of the Vedas, it is not possible to understand "Dharma" or to benefit from its virtues.

Power, prestige, wealth can be achieved quite easily through unrighteous and dishonest means. All material wishes are easily fulfilled, which, however is short lived as compared to the satisfaction and happiness of a righteous person.

Maharishi Manu unequivocally affirms the utter destruction of an unrighteous person. The person cannot escape the consequences of his/her transgressions and sins. Conduct of a righteous person does not harm any other being. This is the mark of a righteous behaviour. If we see a righteous person suffering, it is because he bears injustice due to his ability to counteract it. Seeing this behaviour among righteous men, Rishi Dayanand has written, that a person tolerating injustice is a bigger sinner as compared to the one perpetrating it. This reluctance to act is also a major reason behind the success of dishonest people.

Maharishi Manu writes:

For the unrighteous:

अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति
ततः कामानवाप्नोति समूलस्तु विनश्यति ।

For the righteous:

अर्थकामेष्वसक्तानाम् धर्मज्ञानं विधीयते
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ।

यज्ञ तथा दान

– डॉ० महेश विद्यालंकार

जीवनलक्ष्य की प्राप्ति में यज्ञ तथा दान का महत्त्वपूर्ण स्थान तथा योगदान है । इनका प्रभाव तथा महिमा अनन्त है । यज्ञ सुख, शान्ति, मेलमिलाप, नीरोगता और शरीर तथा आत्मा आदि की शुद्धि का आधार है । यज्ञ को स्वर्ग का सोपान कहा गया है । यज्ञ करने वाले का घर हरा-भरा और धन-धान्य से परिपूर्ण रहता है । यज्ञ में दान, पूजा तथा संगतिकरण तीनों का समावेश है । यज्ञ आध्यात्मिक उन्नति का आधार है । यज्ञ से प्राणिमात्र का कल्याण होता है । देने, बाँटने, फैलाने, खिलाने तथा उपकार का इससे बढ़कर और कोई साधन नहीं है । इससे अपना और पराये दोनों का भला होता है । इससे पर्यावरण की सुरक्षा तथा रोगों से मुक्ति मिलती है । इससे मनुष्य की आयु बढ़ती है और जीवन स्वच्छ, निर्मल, सात्त्विक एवं धार्मिक बनता है । यज्ञ अपने में चिकित्सा है । यज्ञीय वातावरण में रहने या बैठने से तन एवं मन के अनेक रोग दूर होते हैं । यज्ञ अपने में स्वास्थ्यवर्धक, रोगनाशक, वायुशोधक तथा प्रदूषण-नियन्त्रक माना गया है । यज्ञ से भौतिक व आत्मिक उन्नति चमत्कारी रूप में होती है । यज्ञ को मोक्ष का द्वार माना गया है, क्योंकि यह निष्काम और परोपकार का कर्म है । यज्ञ से मनुष्य का जीवन बदल जाता है । इससे जीवन में समर्पण, त्याग और सबके हित की भावना जागती है । यज्ञ प्रभुपूजा का श्रेष्ठ साधन है । इससे जड़ और चेतन देवताओं की पूजा होती है । वेद कहता है – 'जो यज्ञ को छोड़ देता है, प्रभु उसे छोड़ देते हैं ।' यज्ञ प्रभुप्राप्ति की पात्रता देता है और उस से मिलाता है । यज्ञमय जीवन उद्देश्यप्राप्ति में सहायक बनता है । यज्ञ भारत की विश्व को देन है ।

भारतीय जीवनधारा में दान का महत्त्व अनादिकाल से है । धन की शुद्धता दान से ही आती है । जीवनलक्ष्य की प्राप्ति में दान की अहं भूमिका है । उपनिषद् कहती है – श्रद्धा से दो, अश्रद्धा से दो, भय से, लज्जा से या प्रतिष्ठावश दो, परन्तु दो अवश्य । भाव यही है कि किसी न किसी प्रकार से दान जरुर करो । दान से धन और बढ़ता है । दान से मनुष्य का मन सात्त्विक होता है । दान ऐसा उत्तम कर्म है, जिससे जीवन बुराइयों से छूटता है । दान से हृदय में दया, करुणा, उपकार, मानवता आदि के भाव जागृत होते हैं और जीवन में सात्त्विकता, पवित्रता, धार्मिकता आदि उच्च भाव बने रहते हैं ।

धन की तीन गतियाँ होती हैं – दान, भोग एवं नाश । यदि धन धर्मकार्यों, परहित तथा जनकल्याण में लग गया तब तो ठीक है, नहीं तो धन भोगविलास, श्रृंगार, दुर्व्यसनों, रोगों आदि में जायेगा अथवा नष्ट होगा । धन की उत्तमगति दान को ही माना गया है । जो दान देश, काल तथा पात्र को देखकर दिया जाता है, वह सात्त्विक कहलाता है । वास्तव में पात्र, जरुरतमन्द तथा जिसे आवश्यकता है, उसे देना सच्चा दान कहलाता है । दान देते हुए अहंकार व प्रदर्शन का भाव नहीं आना चाहिये । इससे जीवन में रजोगुण तथा तमोगुण को बल मिलता है । अहंकार आध्यात्मिक उन्नति में बाधक है । अपात्र को दिए हुए दान का कोई फल नहीं मिलता है । वह दान को गलत बातों व चीजों में लगाता है ।

दुनिया में जितने भी दान हैं, उनमें विद्यादान सर्वश्रेष्ठ माना गया है । विद्या जीवनदृष्टि देती है और जीना सिखाती है । यदि हम किसी के विद्याध्ययन में सहयोगी बने हैं तो प्रभुकृपा से उसे नया जीवन मिला है । ज्ञान तीसरा नेत्र कहलाता है । मेहनत, ईमानदारी तथा हक से कमाया हुआ धन जब दान में लगता है, तब वह फलता-फूलता और बरकत देता है । आदान-प्रदान से सृष्टि चलती है । जगत् का सबसे बड़ा दानी परमात्मा है, जो निरन्तर सबको कुछ न कुछ दे रहा है । जो लोग आडम्बर, प्रदर्शन, घोषणा, नाम, यश-कीर्ति आदि के लिये दान देते हैं, सच है कि वह दान से व्यापार कर रहे हैं । सच्चा दान तो वह कहलाता है कि जो एक हाथ से दिया जाये, दूसरे हाथ को पता भी न चले – "नेकी कर कुँए मे डाल ।" आज दान अपने सत्यस्वरूप को खो रहा है । वेद का आदेश है – सौ हाथों से कमाओ, हजारों हाथों से बाँटते चलो । देने से जीवन पवित्र व धार्मिक बनता है । दान से जीवन में मोह-माया, लालच, भोगप्रवृत्ति आदि छूटते हैं, जीवन की धारा भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर बहने लगती है । और जीवन हल्का रहता है । सच्चे दान से प्रभु प्रसन्न होते हैं ।

यज्ञ तथा दान दोनों ही जीवनोद्देश्य की प्राप्ति में विशेष स्थान ए वं महत्त्व रखते हैं । इन दोनों के आचरण से आत्मोन्नति होती है, दूसरों का भला होता है, प्रभु प्रसन्न होकर और ज्यादा देते हैं, जीवन सत्यमय होने लगता है और इससे उद्देश्य की प्राप्ति में सहायता मिलती है ।

Chants for Universal Peace

– Himanshu K Agarwal

The world today, as at most times in its existence, has been a catalogue of uncertainty, turmoil and misery. Most times have been grim and uncertainty has always loomed on the horizon. Swathes of the world have either been at war or been in preparation for war. Today, when technology has increased the efficacy of everything, including weaponry, enabling mass murders with little effort, its often said that wars face a bleak future. Yet, even today, we find tens of thousands of refugees from war crossing international boundaries seeking sanctuaries.

Given all this strife, the pride of place our Vedas and Upanishads have accorded to the Shanti Mantras or Peace Mantras stand in a big contrast. Our ancestors discovered eons ago that more than anything else, what is most important to allow everything, including we ourselves to flourish is Shanti. Shanti can loosely be translated as calmness, tranquility, stillness or bliss. The Shanti Mantras have pervaded our lives everywhere, be it rituals, meditations, agni hotras or discourses. The concept of Shanti conveys to us the power of being at peace with ourselves but is not limited to our personal peace. Rather our personal peace becomes some kind of a building block, to have peace all around. Our personal peace can never be complete without surroundings that also perpetuate peace. We as individuals need to become more and more peaceful so that we can develop these qualities in the people and systems around us. Only once we are at peace with ourselves is it possible for us to seek the tranquility in others. If we are not in harmony with ourselves, it is not possible to be in harmony with others. If we are in a constant state of conflict with ourselves, how is it possible to avoid conflict with others. We need to seek out and emphasise the peace within ourselves and then the hustle of the world will gradually become secondary and less of a priority for us.

The Shanti Mantras are interspersed through our Vedas and Upanishads. The most prominent one is the Shanti Paath which is from the Yajur Veda. In this Mantra, we invoke Peace on the Sky, Space, Earth, Water, Herbs, Trees, The Universe, Brahma, and also Ourselves. Individual peace without the entire eco system being peaceful and in harmony is something that would be very fragile. This interconnectedness of the universe was well known to our sages then when they said that personal peace would drive the entire world to be more harmonious within. Today's science acknowledges the very same concept when chaos theory states that something as imperceptible as the flutter of a butterfly's wing can ultimately cause a typhoon half way around the world.

The thinking of the west in this regard has been very different. Their emphasis has been on emerging victorious, which is an invitation to tumult. They have tried to understand the world

but have known nothing about themselves as individuals and their inner workings. They have failed to look inward, while our Mystics lived their life exploring inwards. When exploring inwards they found that while our mind creates the disturbance and the sound, our inner being is essentially silence. And while we concentrated on individual effort and enlightenment, the west worked in a totally different direction and on a different paradigm. The result was that while we produced many enlightened souls, all that the west could come up with was an extremely hierarchial structure headed by the pope. This structure itself completely aborted any aspirations of understanding man. To anyone in the east, it is so very clear that attainment and the inward journey is always personal and someone who is heading a hierarchy can hardly have anything to do with regard to one's progress in understanding the self. The head of the chain of command would be kept busy sorting out the unrest that a chain of command brings. Its got everything to do with management and nothing to do with spirituality.

Our minds are volatile. And they are overflowing with all kinds of scraps of thoughts, ideas, imaginations and dreams. And so many of them are in conflict with each other. And yet we can transcend them because we are not just the mind. We are much more than the mind. Much like the Lotus flower, which may grow in mud, but blossoms when it transcends that. Inner peace will help us to calm our thinking and stimulated minds. Once we transcend these ephemeral conflicts, our calls for peace would resonate through everything. Our Shanti Mantras would become a seminal point in the world's quest for Peace. And then we would find that we are peace and bliss. We are understanding and silence.

Birthday Blessings

The Birthday Blessings are organized every week during our regular weekly satsang. All members and their families whose birthdays fall during the week are invited to be the "yajmaan" for the Havan on the Sunday following their birthday or that Sunday itself if their birthday is on that day. Some glimpses of the recent Birthday blessing Havans at our Samaj.

साधारण से असाधारण बनने की यात्रा है जीवन

– डॉ० अरुण देव शर्मा

हम सब जीव(आत्माओं) का जब शरीर से संयोग होता है तो इस घटना को जन्म कहते हैं और जब इस शरीर से वियोग होता है तो इसे मृत्यु कहते हैं। इस शरीर में हम स्वयं प्रविष्ट नहीं होते अपितु हम सबका परम पिता और माता परमेश्वर हमें इस शरीर में प्रवेश कराता है। जब हम शरीर में प्रविष्ट होते हैं तभी से इस अचेतन(जड़) शरीर में हमारी चेतना कार्य करना प्रारम्भ कर देती है और इसमें वृद्धि व क्षय की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। तब से हमारे शरीर की आयु बढ़ती जाती है और इसमें हमारा जीवनकाल घटता जाता है। बढ़ती आयु के साथ हम जो भी देखते, सुनते और जानते हैं, उसे ही बार-बार स्मरण करते हैं और सुखी होने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार बाल्यावस्था से ही हमारे ऊपर आसपास के वातावरण का, वस्तुओं व व्यक्तियों का अच्छा-बुरा प्रभाव पड़ना शुरु हो जाता है और हम उसी वातावरण में ढलने लगते हैं।

बचपन से हमारी वृत्तियाँ वैसी ही बन जाती है जैसी हमारे माता-पिता, भाई-बहन और संगी-साथियों की होती हैं। बचपन से उनकी देखादेखी हमारा स्वभाव उनके जैसा बनने लगता है और जीवन-भर हम उनके जैसे या उनसे सीखे-सिखाए हुए काम करने लगते हैं और कहीं-कहीं मनमाने ढंग से भी हम अपना जीवन जीने लगते हैं। हम जन्म के बाद जैसे व्यक्तियों को देखते-सुनते हैं और जिनके साथ रहते हैं उनकी अच्छी-बुरी क्रियाओं को करना सीखते रहते हैं। प्रायः हम दूसरों को देख-सुनकर ही जीना सीखते हैं।

हमारे पूर्व के ज्ञान, कर्म, उपासना सांसारिक होते हैं, जिनके अनुरूप हमारे चित्त पर लौकिक संस्कार व अनुभवों का प्रभाव अधिक होता है, इस कारण आध्यात्मिक ज्ञान-कर्म-उपासना करना हमें कहीं नहीं सिखाया जाता, न घर में और न स्कूल आदि में। क्योंकि समाज का वातावरण अर्थ-भोग प्रधान हो गया है, धर्म व मोक्ष की शिक्षा पाना हमने छोड़ दिया है इसी कारण आज हर व्यक्ति अशान्त व दुःखी है। शान्ति व सुख के लिए हमें अपने चित्त पर पड़े हुए रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्दादि विषय-भोगों के संस्कारों को नष्ट करना होगा और अपने औसत दर्जे के सामान्य जीवन को बदलना होगा।

इस संसार के प्रवाह में बहने का हमारा स्वभाव बन चुका है। इसमें तैरने का अभ्यास करना आवश्यक है। जिसमें हमें अपने विचार-व्यवहार और जीवन जीने के सभी तौर-तरीकों को ध्यान से देखना चाहिए। इस प्रकार आत्मनिरीक्षण करने से हमारा साधारण-जीवन असाधारण बनने की राह पर चलना शुरु होता है। अपना दर्शन अथवा अवलोकन करते हुए स्वयं को बदलने, सुधारने और सँवारने को अध्यात्म की भाषा में 'योगाभ्यास' कहते हैं, जो कि विषय-भोगों के अभ्यास से सर्वथा भिन्न है। इस भवसागर में तैरता हुआ कोई योगी सत्पुरुष ही हमें इसकी पाप-पुण्यमयी धाराओं के विपरीत तैरना सिखा सकता है ! यह योग करने पर सरल और न करने पर कठिन होता है। हम इस संसार के प्रवाह में बहते हुए प्रायः व्यक्तियों को हर समय डूबते-मरते हुए देख सकते हैं ! इस क्षणिक दुःख-सुख रूपी भँवर-जाल में फँसे हुए लोग निरन्तर डूब और मर रहे हैं। हम विचार करें कि कहीं इनमें से हम भी एक तो नहीं हैं ? यदि हम इस कर्मफल-भोग के दुष्चक्र से बाहर नहीं निकले तो हमारा जीना व मरना भी एक सामान्य घटना मात्र ही होगा।

मानव जीवन जीने की मुख्यतः दो शैलियाँ हैं। एक लौकिक और दूसरी आध्यात्मिक। इस अनित्य एवं परिवर्तनशील संसार के सुख-साधनों को सुखपूर्वक भोगते रहना व अविद्या, अभिमान, पक्षपात, राग-द्वेष-मोह से कार्य एवं व्यवहार करना सांसारिक जीवन-शैली है। इसके विपरीत इन सांसारिक विषय-भोगों को भोगने की ओर प्रवृत्त न होकर एक तत्त्व ईश्वर की उपासना व

ईश्वर के स्वरूप की ओर प्रवृत्त होते हुए अपने समस्त मानसिक-वाचिक व कायिक कर्मों को परम गुरु ईश्वर को समर्पित करना आध्यात्मिक जीवन-शैली है । जिसमें व्यक्ति सभी पाप व अपराधों से मुक्त होते हुए उनके अनन्त अज्ञान व दुःखदायक जन्म-मरण आदि फलों से भी छूट जाता है ।

हमें सौभाग्य से ही किसी असाधारण योगी पुरुष का सानिध्य प्राप्त होता है । उस दिव्य पुरुष के दिव्य-संङ्ग से हमें लौकिक जीवन-शैली को छोड़कर आध्यात्मिक जीवन-शैली से जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है । स्वयं की स्थिति को समझे बिना हम अपनी पुरानी जीवन-शैली को नहीं बदल सकते ? हमारे चित्त के ऊपर अच्छे सत्संग व सुविचारों का अच्छा और कुसंग व कुविचारों का बुरा प्रभाव पड़ना रहता है । जब तक हम अपनी संगति को नहीं बदलेंगे और उसके स्थान पर सत्संग-स्वाध्याय-ध्यान आदि दिव्य क्रियाओं को नियमित रूप से नहीं करेंगे तब तक अपनी मनःस्थिति को बदल नहीं सकते !

हमारे चित्त पर अविवेक व राग-द्वेष पूर्वक किए गए कर्मों व विषय-भोगों के कुसंस्कार इतने पड़ जाते हैं कि जिनके कारण हम न तो स्वयं के वास्तविक स्वरूप को पहचान पाते हैं और न किसी विद्या, विद्वान् व ईश्वर के सत्य-स्वरूप को समझ पाते हैं । हम इन्हें अपनी ही संकुचित व संकीर्ण दृष्टि से देखते रहते हैं । इस तरह से तो हमें इनका यथार्थ ज्ञान कभी नहीं हो सकेगा । हमारे पास स्वतःकहीं से ईश्वर की वेद-दृष्टि प्राप्त नहीं होगी ! उसके लिए तो हमें अत्यन्त पुरुषार्थ करना होगा !

संसार में दो ही मार्ग हैं । एक है भक्ति, योग, सत्य, प्रेम, शान्ति और सुख का मार्ग । जो कि ईश्वर-प्राप्ति की ओर जाता है और दूसरा मार्ग इस धर्म व अध्यात्म के मार्ग से सर्वथा विपरीत है । वह है विषय-भोग, रोग, कलह, अशान्ति व दुःख का मार्ग । यह अधर्म का मार्ग है । घोर अज्ञानी, मूढ़ व्यक्ति जाने-अनजाने अपने व अन्यों के साथ न्याय नहीं कर पाते और न्याय-धर्म का सुपथ छोड़कर अन्याय-अधर्म के मार्ग पर चलते रहते हैं, स्वयं भी दुःखी रहते हैं और अन्यों को भी दुःख देते रहते हैं ।

स्वतः प्रमाण हम नहीं हैं बल्कि ईश्वर और उसकी वाणी वेद है । जबकि प्रायः व्यक्ति व्यवहार में स्वयं को व अपनी वाणी को ही सर्वोपरि मानता है । एक आदर्श-जीवन न जीते हुए भी स्वयं को ही प्रमाण मानना मूढ़ता है । धर्म के क्षेत्र में प्रायः ऐसे व्यक्ति देखे जाते हैं जो कि धर्म का आचरण तो यथावत् करते नहीं और धर्म का दिखावा अधिक करते हैं । ऐसे व्यक्तियों को धर्म का फल प्राप्त नहीं होता । इसलिए धर्म का दिखावा न करके सबसे प्रीति-धर्म व योग्यतानुसार व्यवहार करना चाहिए । स्वयं को अधिक बुद्धिमान् नहीं समझना चाहिए । अपने दोष और दूसरों के गुण देखने की योग्यता ही हमें असाधारण बनाती है और स्वयं को ही श्रेष्ठ मानने की प्रवृत्ति हमें अभिमानी बनाती है । हममें सबकी उन्नति और सम्मान करने की भावना होनी चाहिए ।

मुगलों व अंग्रेजों ने षडयन्त्र व अंग्रेजियत के पक्षपाती लोगों ने हमें अपने भारत देश के उन्नत व आदर्श प्राचीन इतिहास से अवगत नहीं होने दिया । वाल्मीकि रामायण, महाभारत व महर्षि दयानन्द चरित आदि पढ़ने से पता चलता है कि श्री रामचन्द्र जी महाराज, श्री कृष्ण जी महाराज एवं महर्षि दयानन्द आदि ऋषि-मुनि-राजा-महाराजाओं ने कभी किसी दरिद्र, दीन-हीन व शत्रु तक का भी अपमान नहीं किया बल्कि उनका सम्मान ही किया है । इसलिए हमें महापुरुषों से सद्-व्यवहार करने की शिक्षा लेनी चाहिए ।

योगशास्त्र में कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति तीन पापों से बिंधकर ही असत्य, अन्याय, चोरी, अनाचार आदि दुष्कर्म करता है – लोभ, क्रोध व मोह पूर्वक । अन्य स्मृति आदि शास्त्रों में भी आया है कि जो व्यक्ति तीन प्रकार की कामनाओं से बँधा हुआ है वह धर्म का पालन नहीं करता । वें तीन कामनाएँ 'एषणा' कहलाती हैं । उनमें से पहली है – 'लोकैषणा' (मान-सम्मान की इच्छा), दूसरी है – 'वित्तैषणा' (धन की लालसा) और तीसरी है – 'पुत्रैषणा' (इन्द्रिय-लोलुपता) । हमें इन तीनों कामनाओं को छोड़ने से ही धर्म और ईश्वर की प्राप्ति होती है, इन्हें छोड़े बिना नहीं होगी !

स्वयं के व अन्यों के शरीर, आत्मा व संगठन के बल को बढ़ाते हुए हमें अध्यात्म की पहली सीढ़ी चढ़नी होगी ! आत्मज्ञान का प्रारम्भ यहीं से होता है कि हम स्वयं के व अन्यों के समान आत्म-स्वरूप को पहचान कर सबसे आत्मवत् व्यवहार करें ! सबके सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-सम्मान आदि को अपने समान ही जानें !

सीखना ही जीना है और न सीखना ही मृत्यु है । जो व्यक्ति सामान्य लोगों से सामान्य व्यवहार नहीं कर सकता तो वह किसी विद्वान् या परमेश्वर से कैसे विशिष्ट या विलक्षण व्यवहार कर सकता है ? अतः कोई पहले साधारण और फिर असाधारण व्यक्ति बनकर ही किसी सामान्य या असाधारण व्यक्ति, विद्वान् व ईश्वर से सम्यक् व्यवहार कर सकता है । जिसके प्रतिफल में उसे दिव्य गुण एवं अद्भुत विद्याएँ प्राप्त हो सकती हैं; अन्यथा नहीं !

बहुत शान्त, एकान्त, आध्यात्मिक वातावरण में किसी विद्वान् योगी के पास रहने वाले सभी व्यक्तियों का जीवन उसके जैसा ही दिव्य और अलौकिक प्रायः क्यों नहीं होता ? क्योंकि दिव्य-संगति में रहने वाले व्यक्ति जब तक अपनी सोच-समझ को भली भाँति देखकर उसमें सुधार नहीं करेंगे तब तक आध्यात्मिक उन्नति नहीं होती ! जब हमारे मन में अज्ञान व अविद्या का अन्धकार बहुत अधिक हो और ज्ञान व विद्या का प्रकाश आत्मा पर सीधा न पड़ना हो तो हमारी यही दुर्दशा होती है । ऐसे व्यक्तियों के विषय में परमात्मा स्वयं वेद में कहता है –

उतत्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।

– अथर्ववेद १०।७१।४

अर्थात् 'कई ऐसे लोग हैं जो देखते हुए भी नहीं देखते, सुनते हुए भी नहीं सुनते ।' कहीं हम तो ऐसे नहीं हैं ?

I was reading a joke in the morning in newspaper- A Man was guest in his friend's home. The friend's five year old young son was continuously staring at the Man. After a while, the Man asked the Boy, "why are you staring at me ?" The Boy replied, "My father told you are a "Self-Made Man". The Man said "Yes, I am a SELF MADE MAN."

"I wonder if that is the case", The Boy asked, **"Why did you then make yourself like that?"**

When the laugh on joke subsided, a very serious thought started swirling inside me, leaving me with a feeling of restlessness throughout the day. We all are self-made. We can be made in India (latest pride), made in US (old timers' pride) or made in China (no-one's pride, but sustains most of the economic market today). We can be made anywhere in the world but ninety percent of us claim that we are "self-made". And yes even the people with a silver spoon in their mouth are self-made.

The Boy had truth in his question. When we as humans have the capability of making "ourselves", what drives me to make myself as ME, with all my qualities, strengths and weaknesses. Why do not we make ourselves someone ELSE.

Some questions that arise are -

- Do we know what we want to be made into or just being played in hands of destiny and outer environment?
- Do we know our original source and our final destination so as to prepare and make ourselves accordingly?
- Do we know why we are here ?
- Do we know who we really are ?

Probing deeper into my own conscience and becoming aware of my own-self - I did realise that I identify myself with several traits of mine at the same time - A Woman, A Loving wife and a Loved mother, An active member of society with whom I work, an Artist, a Successful Business person, An Indian, A Feminist …… But there is "none" with whom I can identify myself completely with. The question "WHO THE REAL ME IS" continuously keeps haunting and bothering me. These all are constantly changing identities as and when the external environment changes. Same has happened to My Body, My Mind, My Thoughts, which change constantly from birth to death. What is THAT which is CONSTANT in ME and helps me to CONNECT TO ME ? The "I"-ness which remains same with constant forward moving flow of time (when I was a baby, or now when I am middle aged woman or tomorrow when I will be old), in all environments (In home, office, city or country-side), in all state of minds (love, anger, sad, happy). The Shastras and scholars say that we are Atma which resides in the body and that give us the "I-ness" we experience.

The Mandukya Upanishad explains this existence of "I-ness" in a beautiful manner which is easy to relate and understand. It explains that there are four states viz . Waking State(Jagrat), Dreaming (Swapna), Deep sleep (Sushupti) and fourth state (Turiya). The first three states are of the body and not of the Atma. Atma resides in those states

throughout. In Waking state the Atma is Extrovert / Gross, in Dreaming State it is Introvert / Subtle and in Deep sleep it is Sub-Consciousness state/ Casual. Then comes Turiya State - which is Silence State or Consciousness State, a state where Self Realization happens and Atma knows Itself.

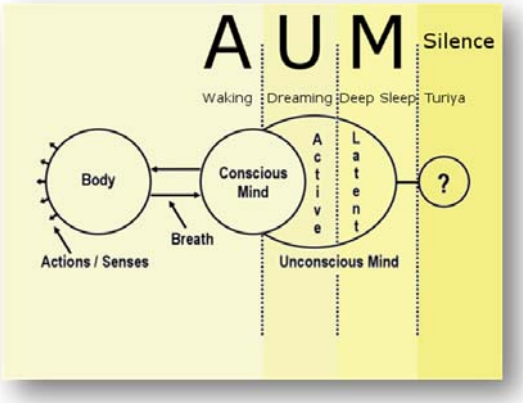

The one that exists and experiences through all four stages is Atma, the real "I".

Now the question is if the Real I is formless, timeless and ageless, why do we d limit it with various adjectives like Women-Men, Doctor-Engineer-Lawyer-Teacher, Poor-Rich, Indian-Foreigner etc. Why do we then aspire for this kind of identity which is ephemeral? Why do we spend or rather waste whole of our life in developing transient identity? The transient identities are needed to sustain ourselves and to live happily in the materialistic world. Carefully choosing those identities or professions according to our nature for success in worldly matters and boasting to be a "Self Made Person" is very much needed. But that should not become a primary goal of our life. Have we ever tried to become aware of our real identity and realise it? The question may arise, why do we need to know it. The answer is simple, knowing something which will change, will always give un-happiness. Knowing and realising something which is "Non-changeable" is the real source of happiness.

Being born as humans, we have a great advantage over other species. Every human has four endowments - self awareness, conscience, independent will and creative imagination. This gives us the ultimate human freedom - the power to choose, respond and build, which animals donot posses. We can experience this "Awareness of self " and achieve "Self Realization"

The Upanishad has been guiding rishis from ages and has been commented by great scholars through various books in simpler manner for everyone to understand and follow. For deeper understanding of various stages, the author inspires readers to study them and experience the truth of life and self-realization.

Source of article - Ekadopanishad by Satyavrata Siddhantankaara. Pictures are taken from internet.

वेद की तीन देवियाँ

(पं. सुरेश चन्द्र वेदालंकार के लेख का सारांश प्रस्तुतकर्त्ता – रवि भटनागर)

वेद में तीन देवियों का जिक्र आता है वह भी भिन्न रूप में इळा; सरस्वती, मही । मातृभाषा, मातृ सभ्यता–संस्कृति और मातृभूमि; यें तीन देवियाँ, माताएँ कल्याण करने वाली हैं । इसलिए यें तीन देवियाँ अन्तःकरण में न भूलते हुए बैठें । यें तीन देवियाँ बड़ी शक्तिशाली हैं । वास्तव में माता शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है । इसको बोलते ही ममत्व का भावपूर्ण अद्‌भुत अनुभव होने लगता है । हमारी वैदिक संस्कृति वास्तव में मातृप्रधान संस्कृति है जबकि पाश्चात्य संस्कृति पितृप्रधान संस्कृति है ।

हमारे यहाँ जन्मभूमि को मातृभूमि कहते हैं और यूरोप में पितृभूमि बोलते हैं । हमारे यहाँ नारी पूज्या होती है – 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।' हमारी संस्कृति के अतिरिक्त कहीं स्त्री को पैर की जूती, कहीं 'स्त्री शूद्रो नाधीयताम्', कहीं नारी को शो केस की गुड़िया और कहीं आदम की पसली से हौआ का बनना बताया गया है और कुछ तो नारी में आत्मा ही नहीं मानते । किन्तु वैदिक संस्कृति में 'माता से बढ़कर कोई देवता नहीं है'। ईश्वर ही माता है । कबीर ने कहा – 'हरि जननी मैं बालक तोरा' महाभारत में एक दिन युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से पूछा – सबसे बड़ा पाप क्या है ? पितामह ने उत्तर दिया – आचार्य की हत्या महापाप है । युधिष्ठिर ने पूछा – क्या इससे बड़ा कोई पाप है ? पितामह ने उत्तर दिया – इससे सौ गुना पाप पिता की हत्या से होता है । युधिष्ठिर ने पुनः पूछा – क्या इससे भी बड़ा कोई पाप है ? पितामह ने बतलाया कि पिता की हत्या से १०० गुना बड़ा पाप माता की हत्या से होता है । माता की महिमा इसी से उजागर हो जाती है ।

वेद के अनुसार बतलाई गई तीन माताओं में पहली माता मातृ भाषा है । हमारी मातृभाषा हिन्दी है । चोदह सितम्बर को हिन्दी दिवस मनाया जाता है । किसी की मातृभाषा कन्नड़, किसी की मलयालम, किसी की तमिल, किसी की पंजाबी है । एक कवि ने कहा –

जिसको न निज भाषा तथा निज देश का अभिमान है ।
वह नर नहीं है पशु निरा और मृतक समान है ॥

वास्तव में मातृभाषा राष्ट्रीय चेतना का बहुत बड़ा स्रोत है । गुलामी के दिनों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में हिन्दी ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जब स्वतन्त्रता–सेनानी "विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झण्डा ऊँचा रहे हमारा" से स्वतन्त्रता के समरांगन को गुंजायमान करते थे । आज भी किसी राष्ट्रीय पर्व पर बालक, युवा, वृद्ध कौमी तराना "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा" गाकर फूले नहीं समाते । संविधान में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया किन्तु अब स्वतन्त्रता प्राप्त किये ७० वर्ष हो रहे हैं किन्तु उसको राष्ट्रभाषा नहीं बना पाये । मैं दूसरी भाषाओं का विरोधी नहीं हूँ । मेरी स्वयं की अधिकांश शिक्षा अंग्रेजी माध्यम में हुई, पढ़ाया अंग्रेजी माध्यम में भी । वास्तव में अंग्रेजी मेरा कौशल है मेरा हुनर है । हुनर में निखार लाने का

प्रयत्न करता हूँ। किन्तु मातृभाषा तो मातृभाषा ही होती है। मैं आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेजी में गीता, रामायण, वेद, उपनिषद् के मन्त्रों की बात कर सकता हूँ, कपिल, कणाद से लेकर दयानन्द तक सुनाता हूँ। मैं तो भाषा की हीनभावना को तोड़ता हूँ। किन्तु अंग्रजी के प्रति कोई मोह नहीं है। जब किसी अंग्रजी में अधकचरे व्यक्ति द्वारा अंग्रेजी शब्द बोलकर प्रभाव डालते देखता हूँ तब वेदना होती है। हमें अपना कार्य हिन्दी में करने में हीनता नहीं वरन् अभिमान का अनुभव होना चाहिए। आज हम न जानते हुये भी अंग्रजी जानने की हीनभावना से ग्रस्त हैं। हिन्दी के प्रति दुराग्रह को दूर कर मातृभाषा हिन्दी को उचित सम्मान दिलाना हमारा कर्त्तव्य है।

वेद के अनुसार दूसरी माता मातृसंस्कृति है। किसी भी राष्ट्र का भौतिक विकास उसकी सभ्यता होती है और आत्मिक विकास उसकी संस्कृति है। सभ्यता यदि शरीर है तो संस्कृति आत्मा है। सड़क, नहर, मोटर, रेल, वायुयान, रेडियो, टी.वी., कम्प्यूटर का विकास उसकी सभ्यता के विकास में आता है। लेकिन सच-झूठ, ईमानदारी-बेईमानी, संयम-असंयम, छलकपट-सहृदयता, प्रेम-घृणा संस्कृति के तत्त्व हैं। एक ओर भारतीय संस्कृति है तो दूसरी ओर पाकिस्तान की संस्कृति है। किसी की संस्कृति छल, कपट, हिंसा, आतंकवाद पर आधारित है जबकि वैदिक संस्कृति में उदारता, शान्ति 'जियो और जीने दो' के साथ ही शठे शाठ्यं समाचरेत् का अनुपम समन्वय है। वैदिक संस्कृति राम, कृष्ण तथा चाणक्य पर आधारित है। यही कारण है कि समूचे विश्व को प्रेम व अहिंसा का पाठ पढ़ाकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को स्थापित करने की आकांक्षा रखने वाला भारत १९६५, १९७१ तथा कारगिल के युद्धों में अभूतपूर्व विजय प्राप्त करता है। जबकि विशाल देशों की सहायता बड़े-२ तोप, टैंक आदि के रूप में पाकिस्तान को प्राप्त थी और भारत के बहादुर सैनिकों ने इनको टीन के डिब्बों की तरह नेस्तनाबूत कर शत्रु की टेढ़ी भृकुटि को सीधा कर दिया था।

तीसरी माता वेद के अनुसार मातृभूमि है। वेद कहता है 'माता भूमिः पुत्रोहंपृथिव्याः'। राम के अनुसार 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' अपनी प्यारी राष्ट्रभूमि के लिये हम वेद मन्त्र के माध्यम से प्रार्थना करते हैं - 'आ राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योतिव्याधि महारथो जायताम्' हमारे राष्ट्र में क्षत्रिय वीर, बहादुर, पराक्रमी, महारथी हों। हमारे राष्ट्र के नेता जागरणशील हों। इसी आधार पर हम कामना करते हैं - अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु। यह सब कुछ प्राप्त करने के लिए आवश्यक है -

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।

आइये अपनी सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ अपने देश को समर्पित करें।

Scientifically designed
Havan Kund,
Pure Mango Wood Samidha
and Havan Samagri
made according to the
"Sanskar Vidhi" using
the best quality herbs and
ingredients are available
from Arya Samaj Indiranagar
at a nominal cost.

Workshops

Continuing further on our initiatives to organize Workshops and Shivirs to spread Vaidic culture, an introductory workshop on the vaidic concept of Happiness - leading to Anand was organized on Saturday, 11th February 2017 from 9 am to 11 am at Samaj premises.

The workshop was very well received by the attendees and more workshops are being planned in the future. Below are some glimpses from the same.

Ayushi chanting Gayatri Mantra

Ku Yukta on stage reciting

Pravachans

Swami Vivekanand ji

Swami Ashutosh ji

Sh Ravi Bhatnagar ji

Dr Kapil Dev Sharma ji

Dr Arun Dev Sharma ji

Varshikotsav 2017

Our Annual Festival - Varshikotsav was organized on Friday 6th January, Saturday 7th January and Sunday, 8th January 2017.

Renowned vedic scholar Acharya Somadev Arya ji (from Ajmer, Rajasthan) and famous bhajanopdeshak Sh Ravinder Kumar Arya ji (from Kanpur) graced the event.

Each of the sessions of the Varshikotsav began with the Vaidic Agnihotra

Sh Ravinder Kumar Arya ji mesmerised one and all with his very meaningful bhajans

The morning session on Saturday 7th January was a Shanka Samadhaan session and Acharya Somadev ji clarified the doubts and answered all the queries raised by the audiences. Some glimpses of the same.

Acharya Somadev ji delivered the pravachans during all the sessions and kept the aduience completely engaged through out and asking for more

Dr Kapil Dev Sharma and Pandit Arun Dev ji conducting the daily sandhya

The event was very well received and was appreciated by one and all.

For the first time, we also did a live event webcast on Facebook. Please like and follow our Facebook page - www.facebook.com/asmiblr for all latest updates and events organized at Arya Samaj Indiranagar.

Sh Sandeep Mittal ji & Sh Narendra Arya ji felicitating Acharya ji

Sh Amar Sharma ji felicitating Sh Ravinder Kumar Arya ji

Smt. Harsh Chawla presenting the report on the activities of the Samaj

Sh Sandeep Mittal ji & Sh Narendra Arya ji giving an update on the building construction activities

Smt Sneh Rakhra ji singing the Shanti Geet

views of the audience during the Varshikotsav

ARYA SAMAJ INDIRANAGAR

MANDIR OFFICE BEARERS

PRESIDENT
Smt. Harsh Chawla – harshsuraj@hotmail.com

VICE PRESIDENT
Smt. Sneh Lata Rakhra

VICE PRESIDENT
Sh. Narendra Arya – narendra.arya@gmail.com

SECRETARY
Sh. Sandeep Mittal – sandeepmittal5@gmail.com

TREASURER
Sh. Amar Sharma – amarpita13@gmail.com

JOINT SECRETARY
Sh. Ravi Ochani – ravi.ochani@gmail.com

EDITOR
Smt. Harsh Chawla

TRUST OFFICE BEARERS

PRESIDENT
Sh Himanshu Aggarwal

SECRETARY
Sh Vivek Chawla

TREASURER
Sh Narendra Arya

ACKNOWLEDGEMENT
Vaidic Dhwani acknowledges with thanks the Hindi typesetting by Dr. Arun Dev Sharma and the layout design by Sh. Yashodhara S and Sh. Raghavendra T

ARYA SAMAJ MANDIR
7 CMH Road, Indiranagar,
Bangalore 560 038
Phone 2525 7756
asmiblr@gmail.com
www.aryasamajbangalore.org

Like us @ www.facebook.com/asmiblr
Join our Facebook group - "Arya Samaj Indiranagar Bangalore" for regular updates

Cover Page Mantra has been taken from Atharva Veda and checked by Dr. Arun Dev Sharma

Vaidic Dhwani is a quarterly newsletter published by Shri Sandeep Mittal of Anutone Acoustics Limited, for and on behalf of ARYA SAMAJ MANDIR INDIRANAGAR (ASMI), mailed free of cost to members and interested individuals. It is for private circulation only. To request a copy, simply mail us your complete postal address. *Vaidic Dhwani* is also available on the ASMI website **www.aryasamajbangalore.org**

Views expressed in the individual articles are those of the respective authors and not of ASMI. No part of this publication may be reproduced stored in a retrieval system, scanned or transmitted in any form or by any means electronic, photocopying, recording or otherwise, without the prior written permission of ASMI.

SERVICES OFFERED

SAMAJ CONDUCTS AT MANDIR

- **Daily Havan** from 7.30 to 8.00 am
- **Weekly Satsang**
  comprising havan, bhajans and discourses every Sunday from 10 to 11.45 am. Every last Sunday of the month, the programme extends to special discourse and Preeti-bhoj.
- **Annual Festivals - Varshikotsav, Vaidikotsav and Gayatri Maha Yajna**
  2-3 days programmes of havan, Bhajans and discourses on Vaidic philosophy by renowned scholars are conducted thrice a year.

SAMAJ CONDUCTS AT MANDIR OR YOUR VENUE

Namkaran & Annaprashan
- naming & first grain

Mundan & Upanayan
- head shaving & thread

Vivah - marriage with certificate valid in court of law

Griha Pravesh - house warming

Antyeshti - funeral rites

Shudhdhi - reversion from other faiths to Vaidic dharma with certificate valid in court of law

Havan - for any ceremony on any occassion, at any place

Contact
1) Smt Harsh Chawla 99726 14241
2) Pandit Brij Kishor Shastry 97410 12159
3) Pandit Arun Dev Sharma 98446 25085

YOGA & PRANAYAM

- **Yoga** (Evening) - 45 days
  Time : Every Mon/Tue/Thu/Fri - 7.00 - 8.30 pm
- **Pranayam** - 11 days
  Time : Mon to Sat - 6.00 - 7.15 am (Morning)
  & 7.00 - 8.30 pm (Evening)
  Venue : Basement Hall
  Sri Nanjunde Gowda 98458 56204

MEDITATION

Manasa Light Age Foundation - Starting from first Wednesday of every month and every Wednesday
Time : 7 - 8 pm
Venue : Small Hall
Sri Pratap Gopalakrishnan 98800 80801

MUSIC

- **Vocal**
  Time : Sat & Sun 2 - 4 pm
  Smt Seethalakshmi 96200 56218
- **Kathak Dance**
  Time : Sat 12 - 2 pm & Sun 7 - 8.30 pm
  Smt Lakshmi Praroha 98447 31615
- **Instrumental Music**
  Time : Tue & Sat 4.30 - 7.30 pm
  Sri N K Babu 98441 22738